

शांत सुधारसस्वरूप,
 अतीन्द्रिय
 आनंदामृत के
 नित्य भोजी,
 अल्पकाल में अनंत
 चतुष्टयस्वरूप परिणामन
 करनेवाले, मुमुक्षुजीव
 के आदर्श समान
 धन्यावतार प्रशममूर्ति
 पूज्य बहिनश्री
 चंपाबहिन के १०५ वें
 मंगलकारी जन्मोत्सव
 के अवसर पर अत्यंत
 विनम्रभाव से,
 दासत्वभाव से
 कोटि कोटि वंदन...



सामान्यतः पीछले २००-४०० वर्ष जीतने भी ज्ञानी प्रसिद्ध हुए हैं
 उनमें से इतनी छोटी उम्र में आत्मज्ञान की प्राप्ति की हो, सम्यग्दर्शन-
 स्वानुभव की प्राप्ति की हो ऐसा यह एक रेकोर्ड का विषय गिनना चाहिए।

- पूज्य भाईश्री (अध्यात्म सुधा भाग-१, पृष्ठ २८९)

स्वानुभूतिप्रकाश

वीर संवत्-२५४५: अंक-२४९, वर्ष-२३, अगस्त-२०१८

आषाढ शुक्ल ९, सोमवार, दि. २७-६-१९६६, योगसार पर
पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी का प्रवचन, गाथा-५४, प्रवचन-१९

५४। 'इन्द्रिय व मन के निरोध से सहज ही आत्मानुभवा'

मणु-इंदिहि वि छोडियइ बहु पुच्छियइ ण कोइ।
रायहँ पसरु णिवारियइ सहज उपज्जइ सोइ।।५४।।

मन, इन्द्रिय को दूर कर। आता है न? है न इसमें? यह संक्षिप्त में संक्षिप्त बात.. भगवान आत्मा अखण्डानन्द प्रभु है, उसे मन और इन्द्रिय से दूर कर और अनुभव कर-यह करने का है। 'क्या बहुत पूछे बात?' बहुत बड़ी-बड़ी बातें पूछे और यह करे और वह करे... परन्तु यह सार तो निकालता नहीं। कहो, समझ में आया? 'क्या बहुत पूछे बात?' ऐसा आया या नहीं अन्दर? है? पूरे दिन पूछना-पूछना, पूछा पूछ, पूछा पूछ (करता है) परन्तु पूछ कर करना क्या है? है?

मुमुक्षु :- स्पष्ट होता है।

उत्र :- क्या स्पष्ट होता है। करने का तो यह है, यह स्पष्ट क्या हुआ?

यहाँ पाठ है न? 'बहु पुच्छियइ ण कोइ' बहुत पूछताछ करता है, पूरे दिन कि इसका ऐसा है और उसका ऐसा है और इसका ऐसा है और उसका ऐसा है... इसलिए यह सम्यग्दर्शन हो गया? और सम्यग्ज्ञान उसके कारण निर्मल हो गया? ऐसा नहीं। 'रायहँ पसरु णिवारियइ' देखो! कहते हैं,

तीन बात की। भगवान आत्मा पूर्णानन्द का नाथ प्रभु, उसे मन और इन्द्रिय से हटाकर और राग दूर करके अन्तर में एकाकार होना, यह मोक्ष के लिए करने योग्य है। मन और इन्द्रिय से हटाकर, अन्दर जाना और राग को दूर करके वीतराग दृष्टि करना। आहाहा..! धमाल (के कारण) यह भी सूझे ऐसा नहीं। यह शत्रुंजय की यात्रा और हो... हो... हो... हो.. भाई! बड़ी धर्मशालाएँ, दस-दस हजार लोग आवें... आहाहा..! धर्म... धर्म... धर्म.. मानो धर्म वहाँ लुटता होगा! धर्म कहाँ है? समझ में आया? यह तो जरा राग की मन्दता होवे तो शुभभाव होता है। भक्ति और यात्रा में धर्म-वर्म है नहीं। आहाहा..!

मुमुक्षु :- कोई यात्रा करेगा नहीं।

उत्तर :- कौन करता है? भाव आये बिना रहेगा नहीं, आयेगा तब। अभी कहते थे कल, हाँ! कि हम विनती करने आनेवाले हैं। ऐइ...! मैंने कहा अब 'अभी शरीर-वरीर काम नहीं करता, अब अपना मन...' नहीं, हम आर्येंगे। कहे, भाई! और दो-चार-पाँच आकर (कहें), पालीताना आये सोलह वर्ष हो गये, एक बार तो आओ, पधारो। लो, इन्हें अभी नजदीक लगता है।

यहाँ तो कहते हैं कि इस यात्रा करने की बड़ी यात्रा यह कि यह भगवान आत्मा अनन्त शान्तरस का पिण्ड है, यह मन और इन्द्रियों से दूर करके

राग हटाकर अन्दर में स्थिर होना, यह बड़ी यात्रा है। आहाहा..! ऐई...! वह तो शुभभाव होता है, परन्तु वह कहीं धर्म है और उसके कारण अन्तर आत्मसन्मुख जाया जाता है, इस बात में कोई दम नहीं है। आहाहा..! समझ में आया? भक्ति, यात्रा होती है परन्तु उसका परिणाम शुभभाव जितना है। समझ में आया? परन्तु वह शुभभाव हुआ, इसलिए आत्मसन्मुख जाएगा-ऐसा नहीं है। उनकी दोनों की दशा और दिशा में अन्तर है। आहाहा..! एक व्यक्ति ने पूजा-भक्ति-यात्रा शुभभाव है, वह पूरा उत्थापित कर दिया (क्योंकि) जब तक स्वरूप में स्थिर नहीं हो सके, तब तक ऐसा भाव आता है परन्तु उस भाव द्वारा धर्म होता है, उस भाव के द्वारा धर्म का कारण होता है, इस बात में दम नहीं है। अरे.. अरे...! कठिन बात परन्तु... है न?

‘बुद्धिमान मन और इन्द्रियों से छुटकारा पाता है...’ भगवान आत्मा, मन और इन्द्रियों से हट जाये, यह इसे करने का है। **‘तो किसी को भी पूछने की आवश्यकता नहीं रहती।’** कुछ पूछने की जरूरत नहीं, यह तो आता है न? निर्जरा (अधिकार) में आता है। निर्जरा (अधिकार) २०६ (गाथा) क्या बहुत पूछने का काम है तुझे? अन्दर जा न! ए..! आहाहा..! फिर करके तो यह करने का है, यह तो तू करता नहीं, पूरे दिन पूछताछ करता है परन्तु इसमें क्या है? आहाहा..! भगवान चिदानन्दमूर्ति आत्मा अखण्ड प्रभु सर्वज्ञ परमेश्वर त्रिलोकनाथ तीर्थकर ने आत्मा देखा, ऐसे आत्मा के अन्तर में स्थिर होना, दृष्टि करके स्थिर होना, यह मुख्य धर्म का कर्तव्य और कार्य है। अब, यह करता नहीं और पूरे दिन पूछताछ करता है कि इसका कैसे और इसका कैसे?



सब इसका (ऐसा कि) अन्दर स्थिर हो यह। ले, समझ में आया? यह बाहर से कोई क्रियाकाण्ड से या पूजा-भक्ति से (या) शत्रुंजय की लाख यात्रा करे, करोड़ करे सम्मेशिखर की, उसमें से आत्मा प्राप्त हो ऐसा नहीं है। कहो, भाई! क्या होगा? कहते हैं कि राग का फैलाव दूर कर। लो! देखो, आत्मा के स्वभाव में एकाग्र होने पर आत्मा की शान्ति का विस्तार होता है। राग का विस्तार घटे और अराग का विस्तार होता है। आहाहा..! शुभराग का भी विस्तार घटता है-यहाँ तो ऐसा कहते हैं। समझ में आया?

आनन्दमूर्ति प्रभु आत्मा है। नित्यानन्द आत्मा अन्दर है, उस नित्यानन्द में-आनन्द में एकाग्र होने पर आनन्द का फैलाव होता है। राग का विस्तार घटता है, यह वस्तु कर्तव्य है। आहाहा..! समझ में आया? **‘तब यह आत्मज्ञान सहज ही उत्पन्न हो जाता है।’**

‘शास्त्र के रहस्य को जाननेवाले, जो व्यवहार-निश्चयन से अथवा द्रव्यार्थिक पर्यायार्थिकनय से छह द्रव्यों का स्वरूप भले प्रकार...’ जानकर आत्मा की ओर उपयोग लगाना चाहिए। **‘आत्माधीन निश्चयचारित्र के लाभ के लिए उपयोग को (उन्हें) मन और इन्द्रियों की तरफ जाने से रोकना चाहिए।’** लो! **‘इन्द्रियों के विषयों की तृष्णा मिटाना चाहिए...’** इत्यादि-इत्यादि बहुत बात है। पूछताछ करने की क्या आवश्यकता है? इत्यादि इन्होंने डाला है। **‘वास्तव में जिसे अनुभव करना है, वह स्वयं ही है।’** क्या कहते हैं? अनुभव-आत्मा का धर्म करनेवाला तो स्वयं ही है। अनुभव करनेवाला आत्मा है। आत्मा स्वयं है, उसे पर के पास से कहाँ कुछ लेना है?

समझ में आया? स्वयं ही अनुभव करनेवाला और स्वयं ही अनुभव का आनन्द लेनेवाला है। उसमें पर को पूछकर कहाँ अन्दर में मिले ऐसा है? आहाहा..! बहु पूछे बात, हाँ! साधारण बात जानने की जरूरत है-ऐसा कहते हैं। 'वास्तव में जिसे अनुभव करना है, वह स्वयं ही है।'

'आत्मा के आनन्द की गाढ़ श्रद्धा सर्व आत्मा अथवा परपदार्थ के आश्रित सुख के प्रति वैराग्य उत्पन्न कर देती है।' लो! यह आत्मा की श्रद्धा कि मैं आनन्द हूँ, इस श्रद्धा से आत्मा

को पर-शरीरादि में आनन्द है, इस बुद्धि का नाश हो जाता है। आत्मा में गाढ़ श्रद्धा होने पर आत्मा आनन्द और अनाकुल शान्त और शान्ति का पर्वत स्वयं है, ऐसे भगवान आत्मा की गाढ़ प्रतीति होने पर आत्मा के अतिरिक्त दूसरे आत्मा और दूसरे पुद्गल में सुखबुद्धि का नाश हो जाता है। कहो, समझ में आया? दूसरे पुद्गल शब्द से यह पैसा-धूल, स्त्री, पुत्र इस धूल में कहीं सुख है नहीं। समझ में आया? यह ५४ (गाथा पूरी) हुई।

धन्य अवतार!

पूज्य बहिनश्री चंपाबेनके संबंधमें परमपूज्य गुरुदेव श्री कानजीस्वामीके उद्गार

बहिन विदेहसे आयी हैं। उन्हें तो असंख्य अरब वर्षका जातिस्मरणज्ञान है। असंख्य अरब वर्षकी बात, कलकी आज दिखे इस प्रकार दिखती है। ...आत्मजातिका ज्ञान होना वह यथार्थ जातिस्मरण है-अनंत अनंत गुणोंका नाथ उसका ज्ञान अंतरमें होना वह (परमार्थ) जातिस्मरण है।



ता.१९-८-८०

बहिनको खबर नहीं कि कोई लिख लेगा। उन्हें बाह्य प्रसिद्धिका जरा भी भाव नहीं। धर्मरतन हैं, भगवती हैं, भगवतीस्वरूप माता हैं। (उनके यह वचन) आनन्दमेंसे निकले हैं। भाषा मीठी आ गयी है।



बहिन अभी तक गुप्त थीं। अब ढँका नहीं रहेगा-छिपा नहीं रहेगा। उनके वचन तो भगवानकी वाणी है, उनके घरका कुछ नहीं है-दिव्यध्वनि है। बहिन तो महाविदेहसे आयी हैं। यह वचनामृत लोग पढ़ेंगे, मनन करेंगे, तब ख्याल आयेगा कि यह पुस्तक कैसी है! अकेला मक्खन है।



ता.१९-२-७८

(बहिनकी) यह वाणी तो आत्माके अनुभवमें-आनन्दमें रहते-रहते आ गयी है। हम भगवानके पास पूर्वभवमें थे। बहुत ऊँची बात है। इस समय यह बात और कहीं नहीं है। बहिन (चंपाबेन) तो संसारसे मर गयी हैं। अपूर्व बात है बापू!



बहिनकी पुस्तक तो ऐसी बाहर आ गई है कि मेरे हिसाबसे तो सबको भेंट देना चाहिये। बहुत सादी-बालक जैसी भाषा; संस्कृत भाषा नहीं। बहुत जोरदार गंभीर बातें उसमें हैं।



अहाहा! यह ऐसी चीज लोगोंके भाग्यसे बाहर आ गई। इसमें पुकारा है आत्माको। ऊपर बहिनका फोटू है-बहुत अच्छा; शांत-शांत!!



बहिन तो बहिन ही हैं; उनके जैसा दूसरा कोई नहीं है। यहाँ हमें कहाँ कुछ छिपा रखना है? बहिन तो अजोड़ हैं, अकेली ही हैं। हमारे कुछ खानगी-गुप्त है नहीं।



बहिनकी पुस्तकमें बहुत संक्षिप्त और माल-माल है। अन्यमतियोंको भी पसन्द आये ऐसा है। ...अरे! उसमें तो तेरी महिमा और बड़ाईकी बातें हैं। मुनियोंकी कैसी बात ली है! - 'मुनियोंको बाहर आना वह बोझ लगता है।' यह पुस्तक बाहर आई सो बहुत ही अच्छा हुआ। अंदर थोड़ेमें बहुत सी बातें है।



बहिन तो एक अद्भुत रतन पैदा हुई हैं। शक्ति अद्भुत है। अतीन्द्रिय आनन्दके वेदनमें उन्हे (बाहरकी) कुछ पड़ी ही नहीं। हिन्दुस्तानमें उनके जैसा कोई आत्मा नहीं है। यह पुस्तक बाहर आई इसलिये कुछ खबर पड़ती है।



चंपाबेन अर्थात् कौन? उनका अनुभव, उनका ज्ञान, समता अलौकिक है। ...स्त्रीकी देह आ गई है। परन्तु अंतरमें अतीन्द्रिय आनन्दकी मौजमें पड़ी हैं; उसमेंसे वाणी निकली है। -यह, उनकी वाणीका प्रमाणपना है।



बहिन अलौकिक वस्तु हैं; देहसे भिन्न और राग से भिन्न आत्माका अनुभव कर रही हैं। उन्हें (बाह्यमें) कहीं मजा नहीं आता, वे तो अतीन्द्रिय आनन्दमें मौज करती हैं।



वि.सं.२०३०

(श्रावण कृष्णा १४ के दिन पं.श्री हिंमतभाईके घर आहार करने पधारे तब-)

पूज्य गुरुदेव :- हिंमतभाई! देखो न, लोगोंको कैसे भाव हैं बहिनके प्रति! दूजके समय कितने ज्यादा लोग आये थे!

पूज्य बहिनश्री (अति नम्रतासे) :- साहेब! मुझे तो आत्माका करना है। यह तो सब उपाधि लगती है।

पूज्य गुरुदेव :- बहिनबा! तुम्हें क्या हैं? तुम तो सब देखती रहो। मेरे हिसाबसे तो अभी कम हो रहा है। तुम्हारे लिये तो लोग जितना करें उतना कम है।



वि.सं.२०३३

एक स्त्रीका शरीर आ गया, नहीं तो (बहीन) दूर एक क्षण नहीं रहती। ...कुछ शब्दोंकी शैली तो उनके घरकी, निवृत्तिकी है। भाषा बड़ी सादी, चार कक्षा तक पढ़े हुए लोगोंको बैठ जाये ऐसी है।



**पुरुषार्थमूर्ति पूज्य श्री निहालचंद्र सोगानीजी द्वारा
साधर्मीओं को लिखे हुए आध्यात्मिक पत्र**

(२३)

कलकत्ता

१३-८-१९६१

ॐ श्री गुरुदेवाय नमः

धर्मस्नेही।

आपका व.. का पत्र मिला था। मेरे सोनगढ़ आकर श्री गुरुदेव की वाणी का लाभ लेने वास्ते लिखा सो जाना। मैं शायद सितम्बर के अंत में वहाँ आ सकूँगा, इसके पहले आना होता नहीं दिखाई देता। मुझे आपके पहले के पत्र नहीं मिले थे, कारण समझ में नहीं आया।

आशा है गुरुदेवश्री सुख-साता में विराजते होंगे।...

आपका

निहालचन्द्र सोगानी



(२४)

कलकत्ता

१९-१०-१९६१

ॐ चैतन्यमूर्ति श्री गुरुदेवाय नमः

आत्मार्थी...धर्मस्नेह।

आपका वात्सल्ययुक्त पत्र यथासमय मिला। भरतखण्डका अलौकिक 'कर्ता-कर्म अधिकार', आत्मरससे ओतप्रोत वक्ता, साधक मुमुक्षुगण श्रोता, जिनालयकी सामूहिक भक्ति, निरंतर अमृतवाणीसे संस्कारित-तृप्त भूमिस्थान आदि समवरण-से दृश्य पुण्यहीनको नहीं सम्भवते, अतः वियोग है। लाभ प्राप्त करनेकी तीव्र प्रतीक्षा है।

पूज्य गुरुदेव कहते हैं- 'बहुमान आदिके शुभरागकी महिमा नहीं आकर, उत्कृष्ट चिदानंद स्वभावकी अनुपम महिमाके दृढ निर्णयका पराक्रम होनेपर अंतर स्वभावमें वलण होता है स्वरूपसीमाको उल्लंघन किये हुए पूर्व उदय, अखण्ड स्वरूप संस्थानमें दौड़ लगाते हुए, सीमास्पर्शके पूर्व ही भयभीत होकर निराश्रय, लड़खड़ाकर गिरने लगते हैं। क्रमः क्रमः पूर्णता होनेकी, सुख-शांतिके अनुभवपूर्वक निःशंकता वृद्धि पामती है।'

बलवानका सब साथ देते हैं। साधकके अखण्डबलके जागृत होते ही, अचेतन पुद्गलादि भी अखण्ड स्वरूपाकार वर्तकर सहायक (व्यवहारे) होने लगते हैं। पत्रोत्तर मिलना, नहीं मिलना, विलम्ब होना आदि सब विस्मृत करने योग्य हैं। ज्ञानानंदस्वभावकी अनुभूतिमें भंग पड़नेपर लिखने आदिके विकल्प होते हैं सो सब स्वरूपसे निकलते ही प्रत्यक्ष, उन्मत्त-पागलपनकी जड़दशास्वरूप अनुभवाते हैं। जड़से जड़के संबोधनमें चेतनको कोई लाभ नहीं।

वर्तमान पर्यायमें पूर्व-उत्तर कालकी पर्यायका ज्ञान विद्यमान है तब स्मरण, मननका बोझा उठाना व्यर्थ है। शुभयोगमें भी थकान अनुभव करनेवाले जीवके लौकिकयोगकी तीव्र दुःखदशा पर.. हे करुणा सिंधु! करुणा करो... करुणा करो, यह ही विनती है।

पर्याय ही पर्यायका कर्ता है, त्रिकाली अंश अथवा आखा द्रव्य नहीं, यह 'कर्ता-कर्म' की चरम सीमा है। अतः पर्यायमें आखा एकाकार होना योग्य नहीं। सबोंको यथायोग्य।

निरंतर समाधि इच्छुक



पूज्य भाईश्री शशीभाई द्वारा परमागमसार
ग्रंथके ९७३ वचनामृत पर भाववाही
प्रवचन, दि. ८-७-१९८५, प्रवचन
क्रमांक-५८१ (विषय : विधि)

निर्विकल्प-दशा, प्रकट होनेकी अपेक्षासे नव-
तत्त्वोंके विकल्प छोड़नेकी बात की है। नव तत्त्वोंका
ज्ञान तो है परन्तु उनके भेदोंके लक्ष्यसे राग होता
है अतः उन्हें छोड़नेका निर्देश दिया है। ज्ञान, नव
तत्त्वोंको जाने सो रागका कारण नहीं है वरन् वह
तो निश्चय सम्यक्त्व है। नव तत्त्वोंका ज्ञान तो
यथार्थरूपसे करना है, परन्तु उनके विषयमें उठने
वाले विकल्पोंका निषेध किया है। ९७३.

... सम्यग्दर्शनरूप है, उसकी विस्तारसे चर्चा
हो गयी। ९६५से इस विषयका प्रारंभ हुआ है। अब
यहाँ एक और बात करते हैं। 'निर्विकल्प दशा,
प्रकट होनेकी अपेक्षासे नव-तत्त्वोंके विकल्प
छोड़नेकी बात की है।' क्या कहते हैं? यहाँ
थोड़ा सूक्ष्म विषय है। आगे ऐसा कहा कि कोई
नवकी बातको ऊड़ाकर मात्र आत्माका श्रद्धान करे
तो किस प्रकार भूल कर बैठता है? वह बात ९७१में
की। 'सातों तत्त्वोंको जाने-बिना आत्माकी श्रद्धा
नहीं होती।'

अब, एक शास्त्र-कथन ऐसा भी आता है कि
'निर्विकल्प दशा, प्रकट होनेकी अपेक्षासे नव-
तत्त्वोंके विकल्प छोड़नेकी बात की है।' नियमसारकी ३८वीं गाथा है कि यह हेय और
उपादेयका, हेय-उपादेय तत्त्वका स्वरूपका कथन है
कि जिसमें नव तत्त्व हेय हैं और एक शुद्धात्मा उपादेय
है। आती है वह बात? नव तत्त्व हेय है ऐसा कहा
है। हेय-उपादेयकी विवक्षामें तो संवर, निर्जरा, मोक्ष
तत्त्व उपादेय है। आस्रव, बन्ध, पुण्य-पाप तत्त्व हेय
है। परन्तु उसके विकल्प छोड़ने हेतु और निर्विकल्प

दशा प्रगट करनेके लिये किस प्रकार प्रयोजन है?
नव तत्त्वोंका विकल्प छोड़नेकी बात की है।

अब तीसरी पंक्तिमें एक बात है कि 'ज्ञान,
नव-तत्त्वोंको जाने सो रागका कारण नहीं है...'
वह तो निश्चय समकित है। यहाँ विषयकी सूक्ष्मता
क्या है? कि नव तत्त्व सम्बन्धित विषयका ज्ञानमें
भावभासन हो, पुण्यभाव उत्पन्न होनेपर, राग भाव उत्पन्न
होने पर वह आस्रव और बन्ध है, ऐसा ज्ञान हो।
ऐसा ज्ञान होनेसे वहाँ-से हटनेकी वृत्ति हो, तो वह
तो निश्चय समकित है। वह तो निश्चय मोक्षमार्ग है।
तो यहाँ सूक्ष्मता क्या है? कि नव तत्त्वोंका विकल्प
छोड़नेकी बात है। जहाँ नव तत्त्वोंका ज्ञान है, परन्तु
नव तत्त्वोंके भेदके लक्ष्यसे राग होता है, इसलिये
उसे छोड़नेकी बात की है।

क्या कहते हैं? कि ये तो नव तत्त्वका विषय
है। नव तत्त्व पर लक्ष्य जानेपर भेद पड़नेसे रागकी
उत्पत्ति हो तो राग तो छोड़ने जैसा है और तभी
उसने नव तत्त्वका ज्ञान यथार्थ किया ऐसा माना जाय।
क्योंकि नव तत्त्वमें भी राग आस्रव-बन्धमें जाता है।
ये तो नवके भेदके लक्ष्यसे राग है वह उपादेय नहीं

है, परन्तु आत्माके लक्ष्यसे राग हो वह भी उपादेय नहीं है।

ये तो दूसरा विचार आया कि ये तो भेदवाले भाव हैं, नव प्रकारके भेदवाले भाव हैं और भेदवाले भाव विकल्पका निमित्त हो वहाँ राग हेय है, राग छोड़नेयोग्य है। परन्तु अभेद आत्माके लक्ष्यसे भी रागका विकल्प हो कि मैं अभेद हूँ, एक हूँ, अखण्ड हूँ, एकरूप हूँ, उसे भी छुड़ाया है। तो नवके भेदका राग तो स्थूल है। जो सूक्ष्म स्वभाव है, अखण्ड अभेद स्वभाव है उसका लक्ष्य होनेपर यदि रागांशकी उत्पत्ति हो तो वह राग वहाँ भी छुड़ाया है। तो नव तत्त्वोंके लक्ष्यसे होनेवाले रागको नहीं छुड़ानेका कहाँ प्रश्न है? उसे भी छुड़ाते हैं।

राग सर्वत्र हेय है, यह इसमेंसे सिद्धान्त निकलता है। वीतरागताकी प्राप्ति हेतु, वीतरागताका उपार्जन करना हो तो उसे राग छूटने पर ही वीतरागता होती है। राग भी रहे, रागको भी रखे और वीतरागता भी करे, राग भी करे और वीतरागता भी करे, दो बातका मेल नहीं है।

देखिये! १७४में एक बात की है। **‘भक्ति आदिका राग तो मुनिको भी आता है,...**’ दूसरी पंक्तिसे **‘फिर भी ऐसा माननेवाला कि नीचली भूमिकामें वैसा राग नहीं होता-निश्चयाभासी है।’** मुनिदशा पर्यन्त भगवानकी भक्ति, स्तुति, वन्दनाका राग आता है। केवलीको नहीं होता। अब ऐसा माने कि वहाँ वह राग नहीं होता। तो वह निश्चयाभासी है। इसप्रकार जिस-जिस भूमिकामें जिस-जिस प्रकारके रागका स्थान है, उसका जो व्यवहार गिना जाता है, वह यदि न आये तो वह निश्चयाभासी है। परन्तु निश्चयाभासी न हो जाय इसलिये कृत्रिमतासे राग करना, ऐसा करे तो वह व्यवहाराभासी है। ये विषय कितना सूक्ष्म है। आगे लिया है, **‘तथा जो राग होता है, उसे आदरणीय माननेवाला निश्चयाभासी है। ये दोनों ही मिथ्यादृष्टि हैं।’** दोनों भूलमें हैं। दोनों मिथ्यादृष्टि हैं। ऐसा विषय है। राग करना ऐसा भी नहीं और भूमिकाका राग न

आये तो ऐसा भी नहीं चलता। ऐसा है। ऐसा मोक्षमार्ग है।

इसलिये यहाँ एक विषय ऐसा है, सम्यक् सन्मुखमें ऐसा एक विषय आता है कि जिस जीवको अपने अनन्त गुण समृद्ध निज स्वरूपका भावभासन होता है, उस अनन्त महिमावंत स्वरूपकी महिमा उसे आये बिना रहे नहीं। तभी उसे वास्तविक आत्मस्वरूपकी महिमा आती है। ऐसी अपूर्व महिमा उत्पन्न हो, ऐसी अपूर्व महिमा उत्पन्न हो कि वह स्वरूप भास्यमान होनेपर वह महिमा छूटे नहीं, फिर वह महिमा छूटे नहीं। फिर भी वहाँ महिमामें आगे बढ़े, लेकिन रागमें आगे नहीं बढ़ना है। अभी वहाँ सरागता है, निर्विकल्प दशा नहीं हुई है, सन्मुखतामें। तो राग तो होगा। राग होगा वहाँ ऐसा कहा कि तुझे निश्चयनयका पक्ष होगा, फिर भी वहाँ पक्षातिक्रान्त होनेका है, पक्षमें अटकना नहीं है।

तो वह महिमा आयी और महिमाके साथ राग भी उत्पन्न हुआ कि जो स्वरूप-महिमा करे ऐसा विकल्प हो। क्योंकि चारित्रगुण भी वहाँ महिमा करता है न। जैसे ज्ञानमें महिमा भासित होती है, तो रागमें भी साथ-साथ वैसा ही होता है। परन्तु राग छुड़ाया है, ज्ञान नहीं छुड़ाया है। वीतराग मार्गमें राग छुड़ाया है। राग दोष है। ज्ञान होता है वह दोष नहीं है। नवका ज्ञान दोष नहीं है, ऐसा यहाँ कहते हैं। परन्तु नव का राग दोष है। आत्माका ज्ञान दोष नहीं है, परन्तु आत्माका राग है वह दोष है।

संप्रदायोंमें तो उनको दूसरे स्थूल रागमें धर्म मानना है। जिसमें कोई ठिकाना नहीं है और बहुभाग तो भावि फल उपार्जन हेतु संप्रदायमें राग करते हैं कि ऐसा करूँगा तो संसार हराभरा रहेगा। बहुभाग तो ऐसा ही होता है न। क्योंकि उसमें सुख माना है, इसलिये गहराईमें वह आये बिना नहीं रहता। उस स्थूल रागमें जो धर्म मानते हैं, उनका तो कोई पत्ता नहीं लगेगा।

परन्तु यहाँ आकर नव तत्त्वोंका विचार और नव तत्त्वोंका ज्ञानका विषय आता है, वहाँ भी ऐसा

कहते हैं कि निर्विकल्प दशा होने हेतु नव तत्त्वोंका विकल्प छोड़नेकी बात शास्त्रमें की है। अथवा ऐसा जो शास्त्रका विधान है, वह निर्विकल्प दशामें भगवान आत्माका साक्षात्कार करवानेको भगवानने फरमाया है, आज्ञा की है। तू नवका विकल्पका भेद छोड़। निर्विकल्प दशामें शांत होकर तेरे स्वरूपका अनुभव कर।

गुरुदेव तो अत्यंत महिमासे ऐसा विषय आये तब बहुत महिमासे बात करते थे कि तू देख तो सही। अन्दर आत्मा शांत, शांत, शीतल.. शीतल.. शीतल जिनचन्द्र है। चन्द्र शीतल है न? तो अन्दर आत्मा शीतलताका जिनचन्द्र है। उसे तू अन्दर देख। कैसा होकर देख? कि जैसा वह निर्विकल्पस्वरूप है बिलकूल वैसा ही होकर तू उसे देख और अनुभव कर। ऐसा करनेके लिये जहाँ नवको जाने बिना तुझे आत्माकी श्रद्धा नहीं होगी ऐसा आगे कह गये, यहाँ कहते हैं कि नव तत्त्वोंका विकल्प, नवका राग छोड़े बिना भी तेरा छूटकारा नहीं है।

मुमुक्षु :-

पूज्य भाईश्री :- कहते ही हैं। ज्ञानमें जो महिमा आती है, वह तो ज्ञान बराबर उसे विषय करता है इसलिये उसे महिमा आती है। रागमें तो कृत्रिमता होती है। राग कृत्रिम भाव है, विकारी भाव है, वह छोड़नेयोग्य भाव है और वह वीतरागताका विराधक है। राग है वह वीतरागताका विराधक है। जो ज्ञान स्वरूप सन्मुख हुआ वह कहीं वीतरागताका विराधक नहीं है। वह तो आगे बढ़कर अभेद स्वसंवेदनमें जायगा। वह ज्ञान आगे बढ़कर स्वसंवेदनरूप परिणमेगा। जबकि उत्पन्न हुआ रागांश अभाव होकर वीतरागभावरूप परिणमेगा तब कार्यसिद्धि होगी। एकमें अभाव होगा, दूसरेमें वृद्धिगत होगा, ऐसी बात है। दोनोंमें अंतर है।

मुमुक्षु :- ..

पूज्य भाईश्री :- राग और ज्ञान उत्पन्न तो साथमें होते हैं। जबतक उसे पुरुषार्थ उतना तीव्र नहीं है,

स्वरूप सन्मुख होनेके बाद भी पुरुषार्थ मन्द है, तबतक उसे रागकी उत्पत्ति होती रहती है। उसमें स्वरूप सम्बन्धीका विकल्प भी उत्पन्न होता है और नव तत्त्व सम्बन्धित भी अनेक प्रकारके तत्त्व विचारके विकल्प उसे उत्पन्न होते हैं। उसका कोई नियम नहीं है कि ऐसा ही विकल्प उत्पन्न होगा। परन्तु निर्विकल्प होने पूर्व अंतिम समयमें उसे मात्र शुद्धात्माका विकल्प होता है। वहाँ फिर लंबी-लंबी नव तत्त्वोंकी या दूसरे तत्त्वोंकी विचारणा नहीं होती। वहाँ अकेला निश्चयनयका विषय होता है। क्योंकि वहाँ अभी पक्ष रहा है। एक ही पक्ष रहा। उसे भी छोड़कर वीतरागता उत्पन्न हो, तब उसे स्वसंवेदन होता है। जबतक वीतरागता उत्पन्न नहीं हो, तबतक स्वसंवेदन भी उत्पन्न नहीं होता। क्योंकि जबतक राग उत्पन्न होता है, तबतक रागको एकत्वबुद्धिसे वेदता है। और ज्ञानको वेदता नहीं है। एक बार उसे स्वसंवेदन हुआ और रागकी धारा तोड़ी, रागकी श्रृंखला टूटी फिर विकल्प हो, राग उत्पन्न हो तो उससे भिन्न रह सकता है। अनादिकी जो एकताबुद्धि है, वह एक बार तो रागकी श्रृंखला तोड़कर वीतरागतामें आये बिना उससे भिन्न नहीं हुआ जाता। भिन्नताका अभ्यास होता है, परन्तु भिन्न पड़ना वह दूसरी बात है। प्रयत्न अलग बात है, भिन्न पड़ना अलग बात है।

मुमुक्षु :- विपरीततामें..

पूज्य भाईश्री :- किसमें? सन्मुख हुआ उसमें विपरीतता मिटी। ज्ञानकी विपरीतता वहाँ मिटी।

मुमुक्षु :- ज्ञानकी महिमा और रागकी महिमामें भेद है?

पूज्य भाईश्री :- हाँ, भेद क्या है? कि जो ज्ञान स्वरूपको लक्ष्यमें लेता है, स्वरूप लक्ष्यी ज्ञान हुआ वहाँ स्वरूप सन्मुख हुआ, सम्यक् सन्मुख हुआ। उस ज्ञानमें यथार्थ महिमा आती है। अपूर्व महिमा उत्पन्न होती है कि जो आगे बढ़कर स्वसंवेदरूप अभेद परिणामरूप होकर स्वानुभवरूप होगा। उसमें जितनी पुरुषार्थकी कचास है, तबतक सरागता है, विकल्प उत्पन्न होता है, एकत्वबुद्धि भी रहती है, एकत्व हो

जाता है। राग होता है और रागका एकत्व भी वहाँ होता है। परन्तु वहाँ रागका एकत्व किस स्थितिमें होता है? कि एकत्व तोड़नेके प्रयत्नकी स्थितिमें रहा हुआ एकत्व है।

जगतके जो सामान्य जीव हैं उसे रागका एकत्व है, परन्तु कोई एकत्व तोड़नेके प्रयत्नवान नहीं है। ऊलटा धर्मके क्षेत्रमें भी किसी न किसी बहाने रागका प्रयत्न करते हैं। दूसरी स्थूल क्रियामें तो जीव रागका प्रयत्न करता ही है। परन्तु मैं स्वरूप चिंतवन करूँ, मैं आत्माका मनन करूँ, मैं आत्माकी विचारणा करूँ, उसमें भी देखना कि रागका प्रयत्न नहीं करता है न? ऐसा-ऐसा राग करनेका तो तू प्रयत्न नहीं करता है न? इस तरह चेतावनी दी है। जीवको वीतरागतामें लाना है न। इसलिये किसी भी स्थानमें उसे रागमें ठीकपना लग जाय, वह बात रहने नहीं दी है।

मुमुक्षु :- ..

पूज्य भाईश्री :- अरुचि है, उसमें दुःख जानता है। ऐसा भी है। उसमें दुःख भी जानता है। करीब ७५० आसपास बोल होना चाहिये। याद नहीं है। बहुत बोल है न।

मुमुक्षु :- दिशा पलटनेका बोल है?

पूज्य भाईश्री :- सीधी बात है। प्रयत्नका विषय चला है। जीव कहाँ भ्रममें रह जाता है? उसे ऐसा लगता है मैं पुरुषार्थ करता हूँ, मैं कुछ प्रयत्न करता हूँ, मैं तो स्वरूप-ध्यानका प्रयत्न करता हूँ। आत्माका गहरा चिंतवन करता हूँ। उसे एक बहुत सुन्दर बात की है कि रागका प्रयत्न नहीं हो रहा है न? स्थूल क्रियामें भी जीव राग बढ़ानेका और राग पर ज़ोर देनेका प्रयत्न करता है। प्रयत्न है वह परिणामका बलसूचक लक्षण है। परिणाममें जो आवेग, जोश, बल उत्पन्न होता है, वह पुरुषार्थको सूचित करता है। तो तेरा ज़ोर कहीं राग पर नहीं जाता है न?

यदि ज्ञानमें शुद्ध स्वरूपको, ज्ञानमें ज्ञानमय स्वरूपको निज स्वरूपको लक्ष्यमें लेकर उस पर ज़ोर आये तो पुरुषार्थ ज्ञानका अथवा आत्माका है। और ऐसा नहीं होता है तो पुरुषार्थ किसी न किसी प्रकारसे

राग पर जाता है। रागका ज़ोर बढ़ता है। तो वह जीव रागमें आगे बढ़ता है। उसका मार्गदर्शन इतनी हद तक दिया है कि सामान्यतः शास्त्र स्वाध्याय एवं शास्त्र अध्ययनको ज्ञानक्रिया कही है। स्थूल विचारसे तो शास्त्र ज्ञान, शास्त्र अध्ययन, शास्त्र स्वाध्यायको ज्ञानक्रिया कही है। वहाँ सूचना दी है कि वहाँ भी बहुत पढ़नेसे बहुत विकल्प बढ़े तो वह ज्ञानक्रिया नहीं रहती। वह रागक्रिया है।

अब, उस प्रकारसे रागकी क्रिया पर वज़न न जाय और रागमें विकास न हो, रागका डेवलपमेन्ट न हो ऐसी सूचना कहीं दी हो, वहाँ कोई नव तत्त्वकी बात ऊड़ाये कि नवकी श्रद्धामें तो हमें विकल्प होता है, इसलिये हमें नवकी श्रद्धा नहीं करनी है, एककी करनी है। तो कहते हैं, वह भी नहीं चलेगा। हेय-उपादेय तत्त्वोंका तो बराबर भावभासन होना चाहिये। तिर्यचको होता है। ऐसा कहकर बातको स्थापित की है। वहाँ इस प्रकार बातको स्थापित की कि तिर्यचको भी होता है। लेकिन नवके भेदमें-से बाहर निकल जा, नवके विकल्पमें-से छूट जा और निर्विकल्प दशामें आ। ऐसा कहनेके लिये नवके भेदका निषेध किया है, वहाँ नव तत्त्वोंका विकल्प छोड़नेकी बात भी की है। ऐसी बात है।

मुमुक्षु :- ज़ोर राग ऊपर है या राग ऊपर है।

पूज्य भाईश्री :- हाँ। जो अंतःतत्त्वस्वरूप स्वभाव है, यदि उस पर ज़ोर आये तो पुरुषार्थ अंतर्मुख दिशामें आगे बढ़ता है और जो बाह्य भाव है, रागादि बाह्य भाव है अथवा परिणाम अंश भी अंतःतत्त्वसे बाह्य है बाह्य है, बुद्धिका-ज्ञानका क्षयोपशम इत्यादि। कोई भी परिणाम तो बाह्य ही है। उस पर ज़ोर गया, राग पर ज़ोर गया या परिणामके विकास पर ज़ोर गया कि ज्ञान बहुत बढ़ा, पुरुषार्थ अब उग्र हो रहा है, इसप्रकार ज्ञानके क्षयोपशम पर या वीर्यके क्षयोपशम पर या चारित्रमोहनीयके क्षयोपशम पर जाय कि कषाय बहुत मन्द रहता है। चाहे जो हो, कषाय तीव्र नहीं होता। कषाय अत्यंत मन्द रहता है। चाहे जितने कठिन व्रत, तपका पालन करना हो, अपने किसी भी प्रकारका

आर्तध्यान नहीं होता है। इसप्रकार जहाँ बाह्य तत्त्व पर यदि जोर गया, फिर मन्द राग हो, ज्ञानका क्षयोपशम हो या वीर्यका क्षयोपशम हो, तो भी वह बाहर जोर जानेवाला है। उस पुरुषार्थकी दिशा विपरीत है। इसलिये पुरुषार्थ किस दिशामें काम करता है, उस पर उस दिशामें तेरा आगे बढ़नेका सवाल है। इस बात घुमा-घुमाकर भिन्न-भिन्न प्रकारसे स्पष्ट करनी है। कोई भी बोल आये, उसमें वह बात स्पष्ट करनी है।

मुमुक्षु :- ज्ञान पर वज्रन जाता है तो कर्तृत्व कम हो न?

पूज्य भाईश्री :- कर्तृत्व तो पर्याय पर वज्रन जाय तो हो। फिर ज्ञानकी पर्याय हो, पुरुषार्थकी पर्याय हो, कषायकी मन्दताकी पर्याय हो, परन्तु पर्याय पर वज्रन जाय तो कर्तृत्व होता है। कर्तृत्व होता है वहाँ मिथ्यात्व होता है। वह मिथ्यात्वका स्वरूप है।

मुमुक्षु :- ज्ञान पर वज्रन जाय तो कर्तृत्व कम होता है न?

पूज्य भाईश्री :- हाँ, बराबर होना चाहिये। अकर्ता ऐसा जो ज्ञानस्वभाव है, ज्ञाता ऐसा जो ज्ञानस्वभाव है ऐसा कहो या अकर्ता ऐसा जो ज्ञानस्वभाव है, उस पर वज्रन जाय तो कर्तृत्व कम हुए बिना रहे नहीं और मिटे बिना भी रहे नहीं।

मुमुक्षु :- निर्विकल्प माने क्या?

पूज्य भाईश्री :- निर्विकल्प अर्थात् विकल्पका अभाव। उसे निर्विकल्प कहते हैं। जिसमें विकल्पका अभाव है, विकल्प नहीं है, उसे निर्विकल्प कहनेमें आता है। मूल अखण्ड अभेद आत्म स्वरूपमें विकल्पका अवकाश तीनों काल नहीं है, इसलिये स्वरूपको भी निर्विकल्प ऐसा विशेषण लगाते हैं। परन्तु वास्तवमें तो विकल्प या निर्विकल्पकी अपेक्षा भी वहाँ लागू नहीं पड़ती। परन्तु अवस्थामें विकल्प है उसका नाश होकर निर्विकल्प अवस्था होती है, तब ऐसी निर्विकल्पता है वह स्वरूपाकार होनेसे, स्वरूप सदृश्य भाव होनेसे, स्वभावाकार होनेसे, स्वाकार परिणाम होनेसे उसे स्वरूपको भी निर्विकल्प कहा जाता है। परन्तु वह पर्यायके भावसे कहनेमें आता है। जैसे

आत्मा मूलमें मोक्षस्वरूप है। बन्ध उसमें नहीं है, विजातीय भाव। जैसे विकल्प विजातीय उसमें नहीं है, इसलिये सजातिय भावकी अपेक्षासे उसे मोक्ष है, आत्मा निर्विकल्प है ऐसा कहनेमें आता है। आत्माको मोक्षकी अपेक्षा भी लागू नहीं पड़ती और विकल्पकी अपेक्षा भी वास्तवमें लागू नहीं पड़ती।

बुद्धिसे पार एक विषय ऐसा है कि जो स्वभावमें है वह प्रगट होता है। केवलज्ञान, अनन्त सुख। कूँएँ था वह बाहर आया ऐसा कहनेमें आता है न? अनन्त सुख, अनन्त केवलज्ञान आदि जो भाव है वह, जो अन्दरमें शक्ति थी, सामर्थ्य था वह आत्मामें व्यक्त हुआ। और उसी विषयमें ऐसा भी कहा जाता है कि त्रिकाली शुद्धात्मा ज्योंका त्यों है। वह पर्यायमें आती ही नहीं। ना तो बन्धकी पर्यायमें आता है, ना तो मोक्षकी पर्यायमें आता है। बन्ध और बन्धका कारण, मोक्ष और मोक्षके कारणसे जो शून्य है, उससे वह रहित है और उनसे वह अभावरूप है। तीन शब्दका प्रयोग जयसेनाचार्यदेवने ३२० गाथामें किया है। ये तीन शब्दका प्रयोग किया है। एक ही भावको बतानेको। बन्ध और बन्धके कारणसे, और मोक्ष और मोक्षके कारणसे परमपारिणामिकभाव शुद्धनय, परमशुद्धनयग्राहक, परमशुद्धनयग्राहक अर्थात् परमशुद्धनयमें जो ग्रहण होता है, ऐसा जो परमपारिणामिकभाव बन्ध और बन्धके कारणरूप नहीं होता है, मोक्ष और मोक्षके कारणरूप होता नहीं।

ऐसा ऊलटा-सुलटा लगे कि अन्दरमें केवलज्ञान स्वभाव भरा था, वह केवलज्ञानस्वरूपमें प्रगट हुआ। पुनः ऐसा कहे कि स्वभाव तो स्वभावरूप रहता है। उसमेंसे कुछ निकलकर पर्यायमें आये, वह स्वभाव पर्यायमें आये वह बात बनती नहीं।

मुमुक्षु :- ..

पूज्य भाईश्री :- बुद्धिसे बाहरका विषय है। ऐसी बात करते थे गुरुदेव तो। द्रव्य तो देखो कैसा अगम अगोचर है! ऐसा कहते थे। है ऐसा, दोनों प्रकार हैं। ऐसे दोनो प्रकार हैं। प्रसिद्ध है, ये दोनों विषय शास्त्रमें प्रसिद्ध है।

द्रव्य जहाँ परिणमता है, वहाँ प्रमाणका विषय है। जो द्रव्य पर्यायमें आता नहीं है, वह निश्चयनयका विषय है, वह शुद्धद्रव्यार्थिक नयका विषय है। दोनों एक द्रव्यका विषय नहीं है। दोनों अपेक्षाएँ एक नहीं है। अपेक्षा भिन्न-भिन्न है। ऐसा है। यदि प्रमाणसे वस्तुको देखो तो द्रव्यति इति द्रव्यं। जो द्रवता है वह द्रव्य है। यह सूत्र है उमास्वामीका। फिर, रागरूप भी वही द्रव्य परिणमता है और केवलज्ञानरूप भी वही द्रव्य परिणमता है। परिणमता है, द्रव्य है वह परिणमता है।

मुमुक्षु :- प्रमाणका विषय है।

पूज्य भाईश्री :- प्रमाणका विषय है। और पारिणामिकभावकी परिभाषा भी पंचास्तिकायमें ऐसी की है कि जो परिणमता है। द्रव्य आत्मलाभ पारिणामिकः। जो परिणाम जिसका हेतु है। पंचास्तिकाय है न इसलिये द्रव्यानुयोगका विषय चला है। तो वहाँ द्रव्य आत्मलाभ हेतु पारिणामिकः। परिणाम होते रहते हैं। उस परिणामका हेतु कहाँ है? परिणामका आधार कहाँ है? कि द्रव्य है। द्रव्य उस स्वरूप ही है। परिणामको प्राप्त करता ही रहे। लाभ यानी प्राप्ति होना। ऐसा द्रव्य है।

अतः शुद्धनिश्चय नयका विषय है वह निश्चय स्वरूप त्रिकाल अबाधित अखण्ड अभेद एकरूप द्रव्य सामान्यस्वरूप कि जो कभी विशेषरूप होता नहीं। शाश्वत तत्त्व है कि जो कभी भी, किसी भी अवस्थामें वह क्षणिक भावरूप नहीं होता। शाश्वत ही रहता है। ऐसा है।

देखो तो सही, वस्तु कैसी अगम-निगम वस्तु है। इसीलिये तो बुद्धिसे प्राप्त करने गये वह सब भूले पड़ गये। वेदान्त आदिमें प्रखर बुद्धिवाले हुए, ऐसे वेशधारी मनुष्य हुए कि आत्मा अलख निरंजन है तो उसे खोजनेके लिये सब कुछ छोड़कर जंगलमें चलो। वे लोग भी, उसमें भी ऋषि-मुनि दाढी, बालवाले, जटावाले इसलिये बनाये हैं कि उनके वह सब प्रसंग नहीं था। बाल बड़े और बाल कटवानेका कोई प्रसंग नहीं था। इतनी बड़ी-बड़ी दाढी, जटाएँ होती है न? बहुत लंबे-लंबे बाल होते हैं। वह

क्या बताता है? कि वे उसके पीछे इतने लगे थे। बहुत ध्यान किया, बहुत तप किया, पंचाग्नि तप लगाते हैं जटाधारी। पांच इन्द्रियोंके विषय छोड़े, जंगलमें रहे और बहुत बुद्धि लगायी। परन्तु यह विषय इतना अटपटा है पदार्थका कि सिर्फ बुद्धि लगानेसे पता नहीं लगता। कल्पनामें चढ जाता है। फिर कुछ न कुछ कल्पना कर बैठता है कि ऐसा आत्मा है, ऐसा आत्मा है, ऐसा आत्मा है।

तब ज्ञानियोंने, संतोंने उस मार्गको सरल करनेको ऐसा कहा कि ऐसे बुद्धि लगानेसे तुझे प्राप्त नहीं होगा। यह एक ज्ञानलक्षण है कि उसके द्वारा पूरा द्रव्य लक्षित होता है। अनन्त गुण है, अनन्त धर्म है, तेरा बुद्धिका विकास चाहे जितना भी हो, वह मर्यादित है, बहुत मर्यादित है। क्योंकि अनन्त गुण और अनन्त धर्म हैं, तू कहाँ-कहाँ तेरी बुद्धि लगायेगा? चाहे जितना श्रुतज्ञानका क्षयोपशम हो, तो भी केवलज्ञानके आगे वह अनंतवें भागमें है, वह डबरा है। केवलज्ञानके महासागरके आगे वह डबरा है। अनन्तवें भागमें है। परन्तु उसमें एक सुविधा है कि उस सागरका निर्णय यह श्रुतज्ञान करता है। उस अनन्त गुणसागरका निर्णय यह श्रुतज्ञान करता है। उतनी उसमें अनुकूलता है, जाति एक होनेसे, ज्ञानकी जाति एक होनेसे। क्योंकि केवलज्ञान भी ज्ञान है और श्रुतज्ञान भी ज्ञान है। इसलिये जाति अपेक्षासे ज्ञानजातिका होनेसे इतनी अनुकूलता है। एक ज्ञानलक्षण परसे तू पूरे ज्ञानसागरका निर्णय कर सकता है, पहचान सकता है। और तुझे कल्पना न करनी पड़े ऐसा रास्ता है कि जो तिर्यच भी ग्रहण करता है। उसे कहाँ उतनी बुद्धि है? मनुष्य हो तो अनेक प्रकारसे बुद्धिके विकासमें फँसे। परन्तु यहाँ उसे स्वभाव ग्रहण करना है तो उस स्वभावको देखनेका ही दृष्टिकोण अंगीकार करना पड़ता है। लक्षणमें भी उस स्वभावको पकड़ना है। पर्यायको नहीं पकड़नी है। क्योंकि लक्षण पर्यायमें है।

मुमुक्षु :- इतना सुन्दर महान..!

पूज्य भाईश्री :- ऐसी सब बातें हैं।

क्या कहते हैं? निर्विकल्प दशा होनेके लिये

नव तत्त्वोंका विकल्प छोड़नेकी बात की है। नव तत्त्वोंका ज्ञान है, उस विकल्पके साथ नव तत्त्वोंका ज्ञान है, वह भावभासन है वह भूल है ऐसा नहीं कहना है। परन्तु नव तत्त्वोंके भेदके लक्ष्यसे जो रागकी उत्पत्ति होती है, उसे छोड़नेकी बात की है। उसे छोड़ना है। भावभासन हुआ तब नवके भेदके लक्ष्यसे रागकी उत्पत्ति हुयी, वह भाग-रागका भाव सड़ा हुआ है।

मुमुक्षु :- भावभासनका भाव...

पूज्य भाईश्री :- वह इस ओर है। भावभासनका भाव है वह विकसीत होकर स्वसंवेदनरूप परिणमेगा। ज्ञान विकासको प्राप्त होकर स्वसंवेदनरूप परिणमेगा। रागका अभाव होकर वीतरागता होगी। नव तत्त्वोंका भेदवाला राग विकसीत होकर वीतराग नहीं होगा, उसका अभाव होगा। ऐसा है।

‘अतः उन्हें छोड़नेका निर्देश दिया है। ज्ञान, नव तत्त्वोंको जाने सो रागका कारण नहीं है वरन् वह तो निश्चय सम्यक्त्व है।’ जो ज्ञान नवको जाने, नवका भावभासन है वह ज्ञान रागका कारण नहीं है। ज्ञान रागका कारण नहीं है। जो भेद स्वयं उठाता है और राग उत्पन्न करता है, वह राग ही रागका कारण है, ज्ञान रागका कारण नहीं है। क्योंकि वह तो केवलज्ञानीको भी नव तत्त्वोंका ज्ञान है। कि अज्ञान है? उन्हें भी ज्ञान है। तो ज्ञान रागका कारण नहीं है। कोई भी पदार्थ रागका कारण नहीं है।

जगतके पदार्थ रागका कारण नहीं है। तो-तो केवलज्ञानीको परेशान होना पड़े। यदि जगतके पदार्थ रागका कारण होता हो तो सबसे अधिक रागी-द्वेषी केवलज्ञानी हो। वे तो हैरान हो जाय। पदार्थ कोई राग-द्वेषका कारण नहीं है। स्वयं उपादानमें राग-द्वेष करे उस राग-द्वेषका कारण स्वयं ही है। इसप्रकार निजका लक्ष्य करवाया है।

मुमुक्षु :- नव जाने वहाँ तो भेद हो गया।

पूज्य भाईश्री :- इसीलिये यहाँ विषयकी सूक्ष्मता ही यह है कि नवका भावभासन है वह तो बराबर

है। वह तो जरूरी है। नव तत्त्वोंका भावभासन हो, वह कोई दोष नहीं है। वह होना जरूरी है, आवश्यक है। अनादिसे वह नहीं हुआ है। परन्तु साथमें जो भेद विकल्प उत्पन्न हुआ वह सड़न है। उसे साफ करनेकी आवश्यकता है। ये फोड़ा होता है। वह मिटनेकी परिस्थितिमें पहुँचता है, तब क्या होता है? अब हिलींग हो रहा है। चमड़ी आ रही है। हमारे गुजरातीमें उसे भों कहते हैं। भूमिको भों कहते है। जब वह मिटनेकी स्थितिमें आता है तब उसके अन्दर थोड़ा-बहुत पस रह गया हो, तो वह पसका भाग है उसे तो साफ करके निकाल देना है, वह सड़न है। परन्तु उसे साफ करते समय अन्दरसे खून निकाले तो उसे ऊपरकी चमड़ी ठीक तरहसे नहीं आती। साफ करते-करते उसे घिसता ही रहे। वह जब मिटनेकी तैयारी हो तब उसे थोड़े नर्म हाथोंसे साफ करना पड़ता है। जब काटते हैं उस समय उतने नर्म हाथोंसे साफ नहीं करते। जब काटते हैं तब तो बराबर घिसकर, भले ही थोड़ा खून निकल जाय, परन्तु उसे थोड़ा भी सेप्टिकका कण रहना नहीं चाहिये। फिर जब पस दिखता हो, पीला-पीला दिखता हो जब मिटता है तब, तो ख्याल आता है कि अब इसमें ज़ोर नहीं है, माल नहीं है। ये दिखता है लेकिन उसमें कुछ माल नहीं है। थोड़ा नर्म हाथोंसे उसे साफ करना पड़ेगा। तो वह बराबर मिट जाता है। वहाँ खुजली है, थोड़ा घिसकर साफ करे तो? उस वक्त थोड़ी खुजली होती है, जब मिटनेकी तैयारी होती है तब। बराबर घिसे तो अच्छा लगे न?

जैसे सब विषयमें एक ही जगह प्रक्रिया करनी होती है फिर भी उसमें खूबी होती है, उस प्रकारसे काम करना होता है। वैसे यहाँ भी नव तत्त्वका तत्त्वार्थ श्रद्धानं सम्यग्दर्शनका विषय जहाँ हाथमें लिया है, गुरुदेवने यह सब स्पष्टता की है। (और किसीकी) ताकत नहीं है। संप्रदायमें तो नव तत्त्वकी बात भी लुप्त होने लगी है, दूसरी धमालमें। परन्तु भावभासन और इतने सारे पहलूसे इतनी स्पष्ट बात कि नव तत्त्वोंको उडा तो भी ठीक नहीं है और नव तत्त्वको

पकड़कर रागकी पकड़में रहे तो भी निर्विकल्प होकर सम्यग्दर्शनमें आ नहीं सकेगा। ऐसे दोनों पहलूसे बात की है। वह गढ़ाईका विषय है। जैसे मिट्टीके बर्तनकी गढ़ाई होती है, तांबे-पीतलके बर्तनको गढ़ा जाता है, उस वक्त अन्दर और बाहर, दोनों बाजुसे उसे गढ़ना पड़ता है। तब उसकी आकृति बराबर होती है। कि नहीं? अन्दरसे और बाहरसे दोनों ओरसे उसे गढ़ते हैं। वैसे यह बात दोनों बाजुसे है।

मुमुक्षु :- ऊपरसे मारते हैं तब टूटना भी नहीं चाहिये।

पूज्य भाईश्री :- टूटना भी नहीं चाहिये। और मारे तो भी उसकी इतनी नाजुक परिस्थिति होती है कि उसे थोड़ा अन्दरसे भी उभारना पड़े और बाहरसे भी उसे उभारना पड़े। दोनों प्रकारसे। उभारा हुआ बैठाना भी पड़े और अन्दरसे उभारना भी पड़े, उभारा हुआ बिठाना भी पड़े और अन्दरसे उभारना पड़े। ऐसा यह विषय है। थोड़ा नाजुक विषय है।

मुमुक्षु :- केवलज्ञानी भगवान नव तत्त्व जानते हैं...

पूज्य भाईश्री :- नहीं, वहाँ भेद नहीं पड़ता। अतः जाननेसे भेद पड़ता है ऐसा भी नहीं है। जाननेसे राग होता है ऐसा भी नहीं है। ज्ञानका स्वभाव निर्भेदरूपसे जाननेका है, वीतरागपने जाननेका है। जाने इसलिये राग सहित ही जानना पड़े ऐसा कोई नियम नहीं है।

निश्चयनयका और व्यवहारनयका दोनोंका ज्ञान केवलज्ञानीको है। फिर भी उन्हें निश्चयनयका भेद अथवा व्यवहारनयका भेद उत्पन्न नहीं होता। द्रव्य जो है वह निश्चयनयका विषयरूप अंश भी उसमें है और व्यवहारनयका विषयरूप विषय भी उसमें है। दोनों है न? एक ही पदार्थमें दो विषय है। और पूरे पदार्थको केवलज्ञान जानता है। वैसे तो प्रमाण भी जानता है। अभेद प्रमाणमें कहाँ विकल्प उत्पन्न होता है? दोनोंको जाने इसलिये दोनोंका भेद उत्पन्न हो, ऐसा नहीं है। प्रमाणमें भेद नहीं पड़ता। युगपद् जानता है, भेद किये बिना। प्रमाणकी वहाँ पूर्णता है।

मुमुक्षु :- छद्मस्थ प्राणी...

पूज्य भाईश्री :- जाने। वहाँ तो ले जाना है। उस स्थितिको तो साधनी है। छद्मस्थकी उस स्थितिको तो साधनी है कि जहाँ निर्विकल्प हुआ, तब उसने आत्माको जाना या नहीं जाना? जाना। तब उसने पर्यायको जानी या नहीं? द्रव्य सामान्यका अवलम्बन लेकर उसे निर्विकल्प दशा हुयी। तो पर्यायका ज्ञान हुआ या नहीं? हुआ कि नहीं? चर्चा चली थी न? गुरुदेवकी उपस्थितिमें एक विवाद हुआ था। मुमुक्षु चर्चा करे इसलिये कभी कोई बात विवादका कारण बनता है।

निर्विकल्प दशाके कालमें पर्याय ज्ञात होती है या नहीं? यह प्रश्न हुआ था। तो एक पक्ष ऐसा मजबूत हुआ कि पर्याय वहाँ ज्ञात ही नहीं होती। क्योंकि वह तो द्रव्यका अवलम्बन लेकर द्रव्यमें एकाग्र हुयी पर्याय है, इसलिये वह द्रव्यको ही जानती है, पर्यायको नहीं जानती। उसके पीछे यह एक ठोस दलील थी। वहाँ तो द्रव्यमें एकाकार पर्याय हो गयी है। वह ज्ञान तो द्रव्यको एकाकार होकर, एकाग्र होकर द्रव्यको ही जाने, बस! पर्यायको नहीं जाने। विवाद गुरुदेव पर्यंत पहुँचा। गुरुदेवको प्रश्न किया कि निर्विकल्प दशाके समय पर्यायका ज्ञान होता है या नहीं? तो कहा, पर्यायका वेदन होता है। क्या कहा? वेदन होता है ऐसा किसने जाना? द्रव्यने जाना या पर्यायने जाना? जिस पर्यायका वेदन होता है, उस वेदनको जाना किसने कि पर्यायका वेदन हुआ? द्रव्यका वेदन तो होता नहीं। द्रव्यको वेदन होता है? द्रव्यको तो वेदन होता नहीं। वह तो वचनानामृतमें स्पष्ट कर दिया। वह विषय वहाँसे अधिक स्पष्ट हुआ। क्योंकि वह बोल ही वहाँ अजेन्डा पर है। वही विषय अजेन्डा पर है।

पर्यायका वेदन है तो ज्ञात हुए बिना वेदन होता है, पर्यायमें वेदन ज्ञात हुए बिना वेदन होता है, यह बात भी रहती नहीं। परन्तु लक्ष्य पर्याय पर नहीं है। लक्ष्य द्रव्य पर है, अतः द्रव्य ज्ञात होता है ऐसा कहनेमें आता है। और पर्याय गौण होती है

इसलिये और जो द्रव्य लक्ष्यमें है उसमें पर्यायका अभाव होनेसे, पर्याय ज्ञात नहीं होती है, ऐसा भी शास्त्रवचन आये। लेकिन उसका कोई एकान्त खींच ले तो भी भूल होती है। बहुत विषयका चर्चा हुयी।

‘ज्ञान, नव-तत्त्वोंको जाने सो रागका कारण नहीं है...’ देखा! नवको जाने सो रागका कारण नहीं है। **‘वरन् वह तो निश्चय सम्यक्त्व है।’** ज्ञानकी प्रधानसे समकितको लें तो नव तत्त्वोंका यथार्थ भावभासन है और ऐसे नव तत्त्वमें तत्त्व ऐसा ही होता है, आस्रवतत्त्व ऐसा ही होता है, संवरतत्त्व ऐसा ही होता है, ऐसा जो ज्ञानमें प्रतीतिरूप भाव है, वह तो निश्चय समकित है, ऐसा कहते हैं। वह व्यवहार समकित भी नहीं है, वह निश्चय समकित है। वहाँ उसके साथ विकल्प है उसे व्यवहार समकित कहते हैं। ऐसे निश्चय सम्यक्त्वके साथ नव तत्त्वोंके भेद विकल्पको व्यवहार सम्यक्त्व कहते हैं। परन्तु नवका ज्ञान तो निश्चय सम्यक्त्व है। है यह चर्चा संप्रदायमें कहीं? किसे व्यवहार समकित कहा? किसे निश्चय समकित कहना? दोनोंका अविनाभावी सम्बन्ध कैसे होता है?

लोग तो क्या मानते हैं कि अपने व्यवहार समकित तो है ही। नव तत्त्व तो हमने पढ़ लिये हैं। अपने संप्रदायमें नव तत्त्वोंका निरूपण होनेसे नव तत्त्व तो हमने पढ़ लिया है। अतः व्यवहार समकित तो हो गया। भाई! वह पढ़ाईका विषय नहीं है। वह कोई धारणाका विषय नहीं है। व्यवहार समकित तो तब कहा जाय कि ऐसे नवका ज्ञान निश्चय समकितरूप हो, तब साथमें नवके भेदयुक्त श्रद्धाको या भेदयुक्त ज्ञानको व्यवहार समकित कहनेमें आता है। उसके पहले हमने इस नवका अभ्यास किया उसका क्या? वह व्यवहाराभासमें जाता है। वह व्यवहार नहीं है, परन्तु व्यवहाराभास है। आभासमें जाता है। तुझे आभास होता है कि मुझे नव तत्त्वका श्रद्धान है। वास्तवमें वहाँ श्रद्धा नहीं हुयी है या ज्ञान नहीं हुआ है।

मुमुक्षु :- ..

पूज्य भाईश्री :- वही चर्चा चलती है। १६५से

नौवे अधिकारके प्रवचनोंमें चर्चा करते हैं। उसी बोल पर तो यह चर्चा की है। अनेक पहलूसे बात की है।

मुमुक्षु :- नव तत्त्वके भेदके लक्ष्यसे राग होता हो उसमें इष्ट-अनिष्टपना होता है?

पूज्य भाईश्री :- हेय-उपादेयका राग होता है उतना इष्ट-अनिष्टपना हुआ न? पुण्य-पाप हेय है, आस्रव, बन्ध हेय है ऐसा राग हुआ, उसमें यह अच्छा नहीं है, ऐसा हुआ। संवर, निर्जरा और मोक्ष उपादेय है, वहाँ यह अच्छा है ऐसा हो गया। राग और द्वेष दोनों हुए। एक रागका विषय हुआ और एक द्वेषका विषय हुआ। वीतरागतामें दोनोंमें-से एक भी नहीं है। और वह वीतरागता साध्य करनी है। ऐसा है। इसीलिये ज्ञाता-दृष्टापना जीवका स्वभाव है ऐसा कहा है। उसकी मुख्यता की है कि जहाँ कोई विषय परिस्थिति उत्पन्न नहीं करनी है। राग और द्वेषकी विषम परिस्थिति है। वह समभाव नहीं है, जीवका विषमभाव है। और समभावको चारित्र कहा है, समभावको धर्म कहा है। विषमभावको कहीं धर्म नहीं कहा है। और जहाँ राग हो, वहाँ द्वेष होता, होता और होता ही है।

आचार्योंने शास्त्रोंमें उस बातको यहाँ तक स्थापित की कि इस सत्की स्थापनाका जो राग है, हमारे शास्त्रमें हम जो सत्का स्थापन करते हैं, वहाँ असत्की उत्थापनाका द्वेष रहा है। है चारित्रमोहका। दर्शनमोह नहीं है। उसे भी वे चाहते नहीं है। वह भी दोष है। इसीलिये तो वे कोई भी विधर्मिके प्रति मर्यादामें शब्दप्रयोग करते हैं। अमर्यादित शब्दप्रयोग नहीं करते हैं। क्योंकि उनका कषाय मर्यादित है न? चारित्रमोहका राग है। चाहे जैसा, जैनधर्मको जड़से उखाड़ देना चाहिये, ऐसा कोई कहे तो भी वे असत्को मर्यादामें उथापते हैं और सत्को सत्की मर्यादामें स्थापित करते हैं। क्योंकि उनका राग मर्यादित हुआ है, उनका द्वेष मर्यादित हो गया है, उनका मोह मर्यादित हो गया है।

अष्टपाहुड़ है वह कुन्दकुन्दाचार्यदेवका दार्शनिक सिद्धान्तका शास्त्र है। और जैनदर्शनके दार्शनिक सिद्धान्त

स्थापित किये हैं। मूल श्लोककी किसीने अर्थ करते-करते मर्यादा बाहर जाकर प्रहार किया है। कोई स्थानकवासी पर। मूर्तिको उड़ाई है उस पर कोई बात है। जिन प्रतिमाका निषेध किया है। कुछ अमर्यादित लिखा होगा। गुरुदेवने पढ़ा, लिखा है लेकिन इतना नहीं लिखना चाहिये, ऐसा नहीं लिखना चाहिये। उस पर टिकी-टिप्पणी जैसा किया है, लंबा-लंबा लिखा है। जिसने सुना होगा उसे ख्याल होगा। ये बहुत तीव्र द्वेषसे बात लिखी है। तीव्र द्वेषसे नहीं लिखना चाहिये। लिखनेवालेको तीव्र द्वेष हो गया है। फिर भी सत्की स्थापनाका जो शास्त्र निरूपण है, वहाँ असत्की उथापनाका भले ही शब्दप्रयोग न हो तो भी उसमें वह बात गर्भित है। रागके साथ एक सिक्केकी दूसरी बाजु जैसा द्वेष है, है और है। दूसरी ओर नहीं है ऐसा नहीं है। इसलिये साधकजीव रागको तोड़कर वीतरागतामें आते हैं। रागको पलटकर द्वेषमें संसारीप्राणी आते हैं। संसारीप्राणीको राग मिटे तो द्वेष होता है। फिर पुत्र हो या पत्नी हो या बाप हो या माँ हो, जिस पर राग करता है, वह पलटा कि द्वेष हुए बिना नहीं रहता। थोड़ा ऊलटा पड़ा, विपरीत हुआ कि द्वेष होता है।

मुमुक्षु :- ज्ञान क्या करते हैं?

पूज्य भाईश्री :- रागको तोड़कर वीतरागतामें आते हैं। वह अलौकिक लाईन है, मार्ग अलौकिक है! लौकिक मार्गमें वह प्रकार है। वह ऐसा कहे कि तुम्हारे बिना नहीं चलता। फिर उतना ही द्वेष करे। जितना तीव्र राग किया हो उतना द्वेष करे। ये पति-पत्नीमें ऐसा कहते हैं न कि आपके बिना जी नहीं सकते। ये सब दृष्टान्त सुने हैं। ऐसा कहे कि उसके बिना मैं अब जी नहीं सकुँगा। वही मनुष्य ऐसा कहता है कि किसी भी किमत पर उसके साथ नहीं रह सकुँगा। क्या हुआ? जो तीव्र राग था, वह तीव्र द्वेषमें परिणमित हो गया। दूसरा कुछ नहीं है। यह जगतकी स्थिति है।

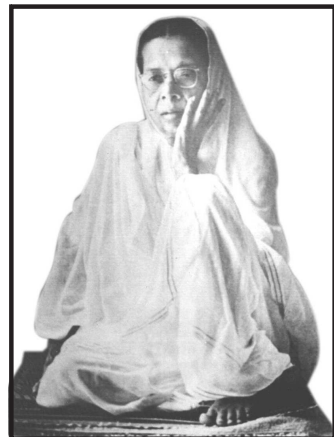
‘नव तत्त्वोंका ज्ञान तो यथार्थरूपसे करना है, परन्तु उनके विषयमें उठने वाले विकल्पोंका निषेध किया है।’ देखो! किस तरह बातको स्थापते हैं। नवका ज्ञान यथार्थ किया है, करवाया है, परन्तु नवके विकल्प उत्पन्न होते थे उसका निषेध किया है। वह राग है, वह कृत्रिमभाव है, वह दोष है, दुःख है, मल है। उसे तो रखनेका सवाल ही नहीं है। वह १७३ पूरा हुआ।

नवीन प्रकाशन आत्मावलोकन प्रवचन भाग-१

पण्डित श्री दिपचंदजी कासलीवाल द्वारा लिखित आध्यात्मिक ग्रन्थ ‘आत्मावलोकन’ पर पूज्य भाईश्री शशीभाई द्वारा हुए भाववाहि अर्थगंभीर प्रवचनोंकी पुस्तक भाग-१ प्रकाशित हो चुका है। जिन मुमुक्षु भाई-बहनोंको स्वाध्यायार्थ मंगवाना हो वे ट्रस्टके कार्यालय पर संपर्क कर मंगवा सकते हैं।

संपर्क :- श्री सत्श्रुत प्रभावना ट्रस्ट, ५८०, जूनी माणेकवाड़ी, पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी मार्ग, भावनगर-३६४००१

पूज्य बहिनश्री की तत्वचर्चा



प्रश्न :- तत्व निर्णयके पश्चात् भेद-अभ्यासमें 'यह पुद्गलका परिणमन' है, वह पुद्गलमें है और मैं तो भिन्न हूँ-ऐसा अभ्यास करके पृथक् हो, तो अनुभव हो सके?

समाधान :- 'देह भिन्न और मैं आत्मा भिन्न' ऐसा अंतरमें विकल्प आये उससे भी 'मेरा स्वभाव भिन्न है'-इसप्रकार विकल्पसे भी भेदज्ञानका अभ्यास करना चाहिये। अपने पुरुषार्थकी मंदतासे विकल्प होते हैं। तो भी विकल्पसे भेदज्ञानका अभ्यास करे कि विकल्प होने पर भी 'मैं उनसे भिन्न हूँ।' विकल्पोंसे भेदका अभ्यास हो तो विकल्पोंसे विभक्त हो और तब विकल्प छूटकर निर्विकल्प अनुभूति होनेका प्रसंग आये। विकल्प मौजूद होनेपर भी 'मैं' उनसे पृथक् हूँ-इसप्रकार विकल्पोंसे अलग होनेका अभ्यास नहीं करे तो अलग नहीं हो सकता। विकल्पोंको हटा दूँ... हटा दूँ-ऐसा करता रहे तो शून्यता जैसा हो जाय; ऐसा नहीं परंतु विकल्पोंसे भेदज्ञानका अभ्यास करनेका है।

(स्वानुभूतिदर्शन-६५०)



प्रश्न :- 'कोई भीषण प्रतिकूलता आ जाय, कोई मर्मच्छेदक वचन कहे तो शीघ्र ही देहमें स्थित परमानंदस्वरूप परमात्माका ध्यान करके देहका लक्ष्य छोड़ देना, समताभाव धारण करना' ऐसा कहा जाता है; परन्तु अभी तो श्रद्धा-ज्ञानका ठिकाना नहीं है तो वह किसप्रकार परमात्माका ध्यान करेगा?

समाधान :- यह बात तो आगेकी है; परंतु जितनी अपनी शक्ति हो तदनुसार करना। मुनियोंको घोर परीषह आते हैं-कोई मर्मच्छेदक वचन कहता है, कोई निंदा करता है,-तो वे मुनि एकदम आत्माके ध्यानमें ऐसे लीन हो जाते हैं कि बाहरका सब भूल जाते हैं। निंदा-प्रशंसा आदि सब जिनके एकसमान हैं तथा यह शरीर भी जिनका नहीं है, शरीरमें जो हो उससे उन्हें कुछ नहीं होता-ऐसे मुनियोंको घोर परीषह आयें तो वे तत्क्षण ज्ञायकके ध्यानमें लीन होकर श्रेणी लगाकर केवलज्ञान प्राप्त करते हैं। पार्श्वनाथ भगवानको उपसर्ग आया था; पांडवोंको कैसा उपसर्ग आया? तथापि वे सब उस समय भी आत्माका ध्यान करते थे। तीन पांडवोंने तो आगे बढ़कर केवलज्ञान प्राप्त किया! यह तो मुनियोंकी बात हुई। परंतु इसप्रकार जिज्ञासु-मुमुक्षु भी अपनी मर्यादा अनुसार जहाँतक हो सके वहाँतक बाहरके प्रतिकूल प्रसंग आनेपर उनमें शांति रखे कि मैं ज्ञायक हूँ। आत्माका ध्यान नहीं हो सके तो मैं ज्ञायक हूँ, मैं तो आत्मा हूँ मुझे कुछ होता नहीं, यह शब्द तो पुद्गल है, इनके साथ मेरा कोई संबंध नहीं है;-ऐसे विचार करे, उसीकी श्रद्धा करे तथा वैसी एकाग्रता और ध्यान करे। पहले यथार्थ ध्यान नहीं होता, परंतु स्वयं भावना करे कि यह शरीर मैं नहीं हूँ, यह तो पुद्गल है; जो कुछ होता है वह शरीरमें होता है, मुझे कुछ नहीं होता; मैं तो ज्ञायक (आत्मा) हूँ-इसप्रकार विचार करे और श्रद्धाका बल बढ़ाये कि मैं तो जुदा हूँ. शब्द नहीं कहता कि तू सुन, और मैं जीव भी वहाँ कुछ सुनने नहीं जाता। मैं अपनेमें हूँ, इसप्रकार विचार करके शांति रखे, समभाव रखे।

(अनुसंधान पृष्ठ सं.१९ पर...)

१६८

बंबई, कार्तिक सुदी १३, सोम, १९४७
 ऐनुं स्वप्ने जो दर्शन पामे रे,
 तेनुं मन न चढे बीजे भामे रे।
 थाय कृष्णनो लेश प्रसंग रे,
 तेने न गमे संसारनो संग रे।।
 हसतां रमतां प्रगट हरि देखुं रे,
 मारुं जीव्युं सफळ तव लेखुं रे।
 मुक्तानन्दनो नाथ विहारी रे,
 ओधा जीवनदोरी अमारी रे।।



आपका कृपापत्र कल मिला। परमानन्द और परमोपकार हुआ।

ग्यारहवें गुणस्थानसे पतित हुआ जीव कम-से-कम तीन और अधिक-से-अधिक पन्द्रह भव करता है, ऐसा अनुभव होता है। ग्यारहवाँ गुणस्थान ऐसा है कि वहाँ प्रकृतियाँ उपशम भावमें होनेसे मन, वचन और कायाके योग प्रबल शुभ भावमें रहते हैं; इससे साताका बंध होता है, और यह साता बहुत करके पाँच अनुत्तर विमानकी ही होती है।



१६९

बंबई, कार्तिक सुदी १३, सोम, १९४७

कल आपका एक पत्र मिला। प्रसंगात् कोई प्रश्न आनेपर अधिक लिखना हो सकेगा।

चि. त्रिभोवनदासकी अभिलाषा प्रसंगोपात्त समझी जा सकी तो है ही, तथापि अभिलाषाके लिये पुरुषार्थ करनेकी बात नहीं बतायी; जो इस समय बता रहा हूँ।

पूज्य बहिनश्री की तत्त्वचर्चा....

मुमुक्षु :- स्वयं जिस भूमिकामें हो तदनुसार करना चाहिए?

बहिनश्री :- अपनी भूमिकानुसार पुरुषार्थ किया जा सकता है; इसलिये वैसा पुरुषार्थ करके अंतरमें स्थिर होना, आकुलता नहीं करना। मुनिराज तो उग्र ध्यान करते हैं; परंतु सबको अपनी-अपनी मर्यादा अनुसार समझ लेना चाहिये। सम्यग्दृष्टि भी आत्माका ध्यान करते हैं; परंतु मुनिकी भूमिका तो जुदी (अनूठी) है। जिज्ञासुको अपनी भूमिकानुसार करना चाहिये। स्वयं संयोगसे न्यारा होकर विचार करे कि यह सब मेरा स्वरूप नहीं है, यह सब उदय है, मैं उससे जुदा हूँ। किसीका दोष नहीं है, मेरे अपने उदयके कारण प्रतिकूलता आयी है, इसलिये शांति रखना।

(स्वानुभूतिदर्शन-६५१)

ट्रस्ट के इस स्वानुभूतिप्रकाश के हिन्दी अंक (अगस्त-२०१८) का शुल्क धर्मेन्द्रभाई न्यालचंदभाई वोरा, भावनगर के नाम से साभार प्राप्त हुआ है। जिस कारण से यह अंक सभी पाठकों को भेजा जा रहा है।